# वेदस्वरूप

( डॉ० श्रीयुगलकिशोरजी मिश्र )

भारतीय मान्यताके अनुसार वेद सृष्टिक्रमकी प्रथम वाणी है।[१] फलतः भारतीय संस्कृतिका मूल ग्रन्थ वेद सिद्ध होता है। पाश्चात्त्य विचारकोंने ऐतिहासिक दृष्टि अपनाते हुए वेदको विश्वका आदि ग्रन्थ सिद्ध किया। अतः यदि विश्व-संस्कृतिका उद्गम स्रोत वेदको माना जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं है।

**वेद शब्द और उसका लक्षणात्मक स्वरूप**—शाब्दिक विधासे विश्लेषण करनेपर वेद शब्दकी निष्पत्ति '**विद-ज्ञाने**' धातुसे '**घञ्**' प्रत्यय करनेपर होती है। अतएव विचारकोंने कहा है कि—जिसके द्वारा धर्मादि पुरुषार्थ-चतुष्टय-सिद्धिके उपाय बतलाये जायँ, वह वेद है।[२] आचार्य सायणने वेदके ज्ञानात्मक ऐश्वर्यको ध्यानमें रखकर लक्षित किया कि—अभिलषित पदार्थकी प्राप्ति और अनिष्ट-परिहारके अलौकिक उपायको जो ग्रन्थ बोधित करता है, वह वेद है।[३] यहाँ यह ध्यातव्य है कि आचार्य सायणने वेदके लक्षणमें '**अलौकिकमुपायम्**' यह विशेषण देकर वेदोंकी यज्ञमूलकता प्रकाशित की है। आचार्य लौगाक्षि भास्करने दार्शनिक दृष्टि रखते हुए—अपौरुषेय वाक्यको वेद कहा है।[४] इसी तरह आचार्य उदयनने भी कहा है कि—जिसका दूसरा मूल कहीं उपलब्ध नहीं है और महाजनों अर्थात् आस्तिक लोगोंने वेदके रूपमें मान्यता दी हो, उन आनुपूर्वी विशिष्ट वाक्योंको वेद कहते हैं।[५] आपस्तम्बादि सूत्रकारोंने वेदका स्वरूपावबोधक लक्षण करते हुए कहा है कि—वेद मन्त्र और ब्राह्मणात्मक हैं।[६] आचार्यचरण स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने दार्शनिक एवं याज्ञिक दोनों दृष्टियोंका समन्वय करते हुए वेदका अद्भुत लक्षण इस प्रकार उपस्थापित किया है—'**शब्दातिरिक्तं शब्दोपजीविप्रमाणातिरिक्तं च यत्प्रमाणं तज्जन्यप्रमिति-विषयानतिरिक्तार्थको यो यस्तदन्यत्वे सति आमुष्मिक-सुखजनकोच्चारणकत्वे सति जन्यज्ञानाजन्यो यो प्रमाणशब्दस्तत्त्वं वेदत्वम्।**'[७]

उपर्युक्त लक्षणोंकी विवेचना करनेपर यह तथ्य सामने आता है कि—ऐहिकामुष्मिक फलप्राप्तिके अलौकिक उपायका निदर्शन करनेवाला अपौरुषेय विशिष्टानुपूर्वीक मन्त्र-ब्राह्मणात्मक शब्दराशि वेद है।

**वेदके दो भाग—मन्त्र और ब्राह्मण**—आचार्योंने सामान्यतया मन्त्र और ब्राह्मणरूपसे वेदोंका विभाजन किया है।[८] इसमें मन्त्रात्मक वैदिक शब्दराशिका मुख्य संकलन संहिताके नामसे प्राचीन कालसे व्यवहृत होता आया है। संहितात्मक वैदिक शब्दराशिपर ही पदपाठ, क्रमपाठ एवं अन्य विकृतिपाठ होते हैं। यज्ञोंमें संहितागत मन्त्रोंका ही प्रधानरूपसे प्रयोग होता है।[९]

आचार्य यास्कके अनुसार 'मन्त्र' शब्द मननार्थक '**मन्**' धातुसे निष्पन्न है।[१०] पाञ्चरात्र-संहिताके अनुसार मनन करनेसे जो त्राण करते हैं, वे मन्त्र हैं।[११] अथवा मत—अभिमत पदार्थके जो दाता हैं, वे मन्त्र कहलाते हैं। महर्षि जैमिनिने मन्त्रका लक्षण करते हुए कहा है—'**तच्चोदकेषु मन्त्राख्या।**' इसीको स्पष्ट करते हुए आचार्य माधवका कथन है कि—याज्ञिक विद्वानोंका 'यह वाक्य मन्त्र है'—ऐसा समाख्यान (—नाम निर्देश) मन्त्रका लक्षण है। तात्पर्य यह है कि याज्ञिक लोग जिसे मन्त्र कहें, वही मन्त्र है। वे याज्ञिक लोग अनुष्ठानके स्मारक आदि

---

१-यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै (श्वेताश्वतरोपनिषद् ६। १८)।

२-वेद्यन्ते ज्ञाप्यन्ते धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयोपाया येन स वेदः (का०श्रौ०भू०, पृ० ४)।

३-इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः (का० भा० भू०)।

४-अपौरुषेयं वाक्यं वेदः (अर्थसंग्रह, पृ० ३६)।

५-अनुपलभ्यमानमूलान्तरत्वे सति महाजनपरिगृहीतवाक्यत्वं वेदत्वम्।

६-मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।

७-वेदार्थपारिजात, पृ० २०।

८-आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि (कौ०सू० १। ३)।

९-अपि च यज्ञकर्म्मणि संहितयैव विनियुज्यन्ते मन्त्राः (नि० १। १७ पर दुर्ग)।

१०-मन्त्रा मननात्।

११-मननान्मनुशार्दूल त्राणं कुर्वन्ति वै यतः। ददते पदमात्मीयं तस्मान्मन्त्राः प्रकीर्तिताः॥ (ई० स०, ३। ७। ९)।

वाक्योंके लिये मन्त्र शब्दका प्रयोग करते हैं।[१] आचार्य लौगाक्षि भास्करने, अनुष्ठान (प्रयोग)-से सम्बद्ध (समवेत) द्रव्य-देवतादि (अर्थ)-का जो स्मरण कराते हैं, उन्हें मन्त्र कहा है।[२] इस प्रकार तत्तत् वैदिक कर्मोंके अनुष्ठान-कालमें अनुष्ठेय क्रिया एवं उसके अङ्गभूत द्रव्य-देवतादिका प्रकाशन (स्मरण)ही मन्त्रका प्रयोजन है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि शास्त्रकारोंके अनुसार '**प्रयोगसमवेतार्थस्मारकत्व**' मन्त्रोंका दृष्ट प्रयोजन है, अतः यज्ञकालमें मन्त्रोंका उच्चारण अदृष्ट प्रयोजक है—यह कल्पना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि दृष्ट फलकी सम्भावनाके विद्यमान रहनेपर अदृष्ट फलकी कल्पना अनुचित होती है।[३] यहाँ यह प्रश्न उठता है कि मन्त्रोंका जो अर्थ-स्मरणरूप दृष्ट प्रयोजन बतलाया गया है, वह प्रकारान्तरसे अर्थात् ब्राह्मण-वाक्योंसे भी प्राप्त हो जाता है; फिर तो मन्त्रोच्चारण व्यर्थ हुआ? इस आक्षेपका समाधान शास्त्रकारोंने नियम-विधिके आश्रयणसे किया है। उनका पक्ष है कि '**स्मृत्वा कर्माणि कुर्वीत**' इस विधायक वाक्यसे तत्तत्कर्मोंके अनुष्ठान-कालमें विहित स्मरणके लिये उपायान्तरके अवलम्बनसे तत्तत्प्रकरणपठित मन्त्रोंका वैयर्थ्य आपतित होता है, अतः '**मन्त्रैरेव स्मृत्वा कर्माणि कुर्वीत**' (मन्त्रोंसे ही स्मरण करके कर्म करना चाहिये)—यह नियम विधिद्वारा स्वीकृत किया जाता है। इसी प्रसंगको आचार्य यास्कने अपने निरुक्त ग्रन्थमें उठाकर उसके समाधानमें एक व्यावहारिक युक्ति प्रस्तुत की है। उनका तर्क है कि मनुष्योंकी विद्या (ज्ञान) अनित्य है, अतः अविगुण कर्मके द्वारा फलसम्प्राप्ति-हेतु वेदोंमें मन्त्र-व्यवस्था है।[४] तात्पर्य यह है कि इस सृष्टिमें प्रत्येक मनुष्य बुद्धि-ज्ञान, शब्दोच्चारण एवं स्वभावादिमें एक-दूसरेसे नितान्त भिन्न एवं न्यूनाधिक है। ऐसी स्थितिमें यह सर्वथा सम्भव है कि सभी मनुष्य विशुद्धतया एक-जैसा कर्मानुष्ठान नहीं कर सकते। यदि कर्मानुष्ठान एक-रूपमें नहीं किया गया तो वह फलदायक नहीं होगा—इस दुरवस्थाको मिटानेके लिये वैदिक मन्त्रोंके द्वारा कर्मानुष्ठानका विधान किया गया। चूँकि वेदोंमें नियतानुपूर्वी हैं एवं स्वर-वर्णादिकी निश्चित उच्चारण-विधि है, अतः बुद्धि, ज्ञान एवं स्वभावमें भिन्न रहनेपर भी प्रत्येक मनुष्य उसे एकरूपतया गुरुमुखोच्चारणानुच्चारण-विधिसे अधिगत कर उसी तरह कर्ममें प्रयोग करेगा, जिसके फलस्वरूप सभीको निश्चित फलकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार मन्त्रोंके द्वारा ही कर्मानुष्ठान किया जाना सर्वथा तर्कसंगत एवं साम्यवादी व्यवस्था है।

याज्ञिक दृष्टिसे मन्त्र चार प्रकारके होते हैं—

१-करण मन्त्र, २-क्रियमाणानुवादि मन्त्र, ३-अनुमन्त्रण मन्त्र और ४-जपमन्त्र।

—इनमें जिस मन्त्रके उच्चारणानन्तर ही कर्म किया जाता है, वह 'करण मन्त्र' है। यथा—**याज्या पुरोऽनुवाक्** आदि। कर्मानुष्ठानके साथ-साथ जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह 'क्रियमाणानुवादि मन्त्र' होता है। यथा—'**युवा सुवासा**'० आदि। जब यज्ञमें यूप-संस्कार किया जाता है तभी यह मन्त्र पढ़ा जाता है। कर्मके ठीक बाद जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह 'अनुमन्त्रण मन्त्र' कहलाता है। यथा—'**एको मम एका तस्य योऽस्मान् द्वेष्टि**'० आदि। यह मन्त्र द्रव्यत्याग-रूप याग किये जानेके ठीक बाद यजमानद्वारा पढ़ा जाता है। इनके अतिरिक्त जो '**मयीदमिति यजमानो जपति**' (का० श्रौ० ३। ४। १२) इत्यादि वाक्योंद्वारा विहित सन्निपत्योपकारक[५] होते हैं, वे 'जपमन्त्र' हैं। इनमें प्रथम त्रिविध मन्त्रोंका अनुष्ठेयस्मारकत्वरूप

---

१-याज्ञिकानां समाख्यानं लक्षणं दोषवर्जितम्। तेऽनुष्ठानस्मारकादौ मन्त्रशब्दं प्रयुञ्जते॥ (जै० न्या० मा० २। १। ७)।

२-प्रयोगसमवेतार्थस्मारका मन्त्राः (अ० स०, पृ० १५७)।

३-न तु तदुच्चारणमदृष्टार्थत्वम्, सम्भवति दृष्टफलकत्वेऽदृष्टकल्पनाया अन्याय्यत्वात् (अं० सं०, मन्त्र-विचार-प्रकरण)।

४-पुरुषविद्याऽनित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे (नि० १। २। ७)।

५-मीमांसादर्शनके अनुसार अङ्ग दो प्रकारके होते हैं—१-सिद्धरूप और २-क्रियारूप। इनमें जाति, द्रव्य एवं संख्या आदि 'सिद्धरूप' हैं, क्योंकि इन सबका प्रयोजन प्रत्यक्ष (दिखायी देनेवाला) है। क्रियारूप अङ्गके दो भेद हैं—(१) गुणकर्म और (२) प्रधान-कर्म। इनमें गुणकर्मको 'सन्निपत्योपकारक' कहते हैं। 'सन्निपत्य द्रव्यादिषु सम्बध्य उपकुर्वन्ति तानि' अर्थात् जो साक्षात् न होकर किसीके माध्यमसे मुख्य भागके उपकारक होते हैं। यथा—'व्रीह्यवघात एव सेचनादि।' जो साक्षात् रूपमें प्रधान क्रियाके उपकारक होते हैं, उन्हें 'प्रधानकर्म' या 'आरादुपकारक' कहते हैं।

दृष्ट प्रयोजन है। जपमन्त्रोंका अदृष्टमात्र प्रयोजन है, ऐसा याज्ञिकों एवं मीमांसकोंका सिद्धान्त है।

मन्त्रोंके लक्षणके सम्बन्धमें वस्तु-स्थितिका विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि कोई भी लक्षण सटीक नहीं है। ऐसा इसलिये है कि वैदिक मन्त्र नानाविध हैं।[१] यही कारण है कि आपस्तम्बादि आचार्योंने ब्राह्मण-भाग एवं अर्थवादका लक्षण करनेके अनन्तर कह दिया—'**अतोऽन्ये मन्त्राः**'[२] अर्थात् इनके अतिरिक्त सभी मन्त्र हैं।

**विधिभाग**—मन्त्रातिरिक्त वेद-भाग '**ब्राह्मण**' पदसे अभिहित किया जाता है। ब्राह्मण शब्द '**ब्रह्मन्**' शब्दसे '**अण्**' प्रत्यय करनेपर नपुंसक लिङ्गमें वेदराशिके अभिधायक अर्थमें सिद्ध होता है। आचार्य जैमिनिने ब्राह्मणका लक्षण करते हुए कहा है कि—मन्त्रसे बचे हुए भागमें '**ब्राह्मण**' शब्दका व्यवहार जानना चाहिये।[३] आचार्य भट्ट-भास्करके अनुसार कर्म और कर्ममें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंके व्याख्यान-ग्रन्थ ब्राह्मण हैं।[४] म०म० विद्याधर शर्माजीके अनुसार—चारों वेदोंके मन्त्रोंके कर्मोंमें विनियोजक, कर्मविधायक, नानाविधानादि इतिहास-आख्यानबहुल ज्ञान-विज्ञानपूर्ण वेदभाग ब्राह्मण है।[५]

ब्राह्मणके दो भेद हैं—(१) विधि और (२) अर्थवाद। आचार्य आपस्तम्बने दोनोंका भेद प्रदर्शित करते हुए कहा है—कर्मकी ओर प्रेरित करनेवाली विधियाँ ब्राह्मण हैं तथा ब्राह्मणका शेष भाग अर्थवाद है।[६] आचार्य लौगाक्षि भास्करके अनुसार अज्ञात अर्थको अवबोधित करानेवाले वेदभागको विधि कहते हैं।[७] यथा—'**अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः**' अर्थात् स्वर्गरूपी फलकी प्राप्ति करनेके लिये अग्निहोत्र करना चाहिये—यह विधिवाक्य, अन्य प्रमाणसे अप्राप्त स्वर्ग फलयुत होमका विधान करता है, अतः अज्ञातार्थ-ज्ञापक है। आचार्य सायणने विधिके दो भेद बतलाये हैं—(१) अप्रवृत्तप्रवर्तन-विधि और (२) अज्ञातार्थ-ज्ञापन-विधि। इनमें '**आग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वर्णनादीक्षणीयम्**' इत्यादि कर्मकाण्डगत विधियाँ अप्रवृत्तकी ओर प्रवृत्त करनेवाली हैं। '**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्**' इत्यादि ब्रह्मकाण्डगत विधियाँ प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाणोंसे अज्ञात विषयका ज्ञान करानेवाली हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि आचार्य लौगाक्षि भास्कर कर्मकाण्ड एवं ब्रह्मकाण्डगत सभी विधियोंको अज्ञातार्थ-ज्ञापन मानते हैं, किंतु आचार्य सायणने सूक्ष्म दृष्टि अपनाते हुए कर्मकाण्डगत विधियोंको 'अप्रवृत्तप्रवर्तन-विधि' कहा और ब्रह्मकाण्डगत विधियोंको 'अज्ञातार्थ-ज्ञापन-विधि' माना।[८]

मीमांसादर्शनमें याज्ञिक विचारकी दृष्टिसे विधि-भागके चार भेद माने गये हैं—(१) उत्पत्तिविधि, (२) गुणविधि या विनियोगविधि, (३) अधिकारविधि और (४) प्रयोगविधि। इनमें जो वाक्य 'यह कर्म इस प्रकार करना चाहिये' एवंविध कर्मस्वरूपमात्रके अवबोधनमें प्रवृत्त हैं, वे 'उत्पत्तिविधि' कहे जाते हैं, यथा—'**अग्निहोत्रं जुहोति**'। जो उत्पत्तिविधिसे विहित कर्मसम्बन्धी द्रव्य और देवताके विधायक हैं, वे 'गुणविधि' ('विनियोगविधि') कहे जाते हैं। यथा—'**दध्ना जुहोति**'। जो उन-उन कर्मोंमें किसका अधिकार है तथा किस फलके उद्देश्यसे कर्म करना चाहिये—यह बतलाते हैं, वे 'अधिकारविधि' कहे जाते हैं। यथा—'**यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्ष्मावतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्**'। जो कर्मोंके अनुष्ठानक्रमादिका बोधन कराते हैं, वे 'प्रयोगविधि' हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि प्रयोगविधिके वाक्य साक्षात् उपलब्ध नहीं होते, अपितु प्रधान वाक्य ('**दर्शपूर्णमासाभ्याम्**')-के साथ अङ्ग-वाक्यों ('**सामधेयजति**'०)-की एकवाक्यता होकर कल्पित वाक्य ('**प्रमाणानुयाजादिभिरुपकृतवद्भ्यां दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत**') ही प्रयोगविधिका परिचायक होता है।

---

१-बृहद्देवता—(१। ३४)।

२-आप० श्रौ० सू०, (२४। १। ३४)।

३-'शेषे ब्राह्मणशब्दः'। (मी० २। १। ३३)।

४-'ब्राह्मणनाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्याग्रन्थः' (तै० सं० १। ५। १ पर भाष्य)।

५-'वेदचतुष्टयमन्त्राणां कर्मसु विनियोजकः कर्मविधायको नानाविधानादीतिहासाख्यानबहुलो ज्ञानविज्ञानपूर्णो भागो ब्राह्मणभागः। (श०ब्रा०भू०पृ० २)

६-कर्मचोदना ब्राह्मणानि। ब्राह्मणशेषोऽर्थवादः (आप० परि० ३४। ३५) 'चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकवचनमाहुः' (भाष्य)।

७-तत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः (अ० सं०, पृ० ३६)।

८-ऋ० भा० भू० विधिप्रामाण्य-विचार।

**अर्थवाद**—आचार्य आपस्तम्बने ब्राह्मण (कर्मकी ओर प्रवृत्त करनेवाली विधियों)-से अतिरिक्तको शेष अवशिष्ट अर्थवाद कहा है।[1] अर्थसंग्रहकारने अर्थवादका लक्षण करते हुए कहा है—प्रशंसा अथवा निन्दापरक वाक्यको अर्थवाद कहते हैं।[2] यथा—'**वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता। स्तेनं मनः अनृतवादिनी वाक्**' आदि।

अर्थवाद-वाक्योंको लेकर पाश्चात्त्य वेद-विचारकों एवं कतिपय भारतीय विचारकोंने वेदके प्रामाण्य एवं उसकी महत्तापर तीखे प्रहार किये हैं। इसके मूलमें आलोचकोंका भारतीय चिन्तन-दृष्टिसे असम्पर्कित रहना है। भारतीय चिन्तन-दृष्टि (मीमांसा)-में अर्थवाद विधेय अर्थकी प्रशंसा करता है तथा निषिद्ध अर्थकी निन्दा। किंतु इस कार्य (प्रशंसा और निन्दा)-में अर्थवाद मुख्यार्थद्वारा अपने तात्पर्यार्थकी अभिव्यक्ति नहीं करता, अपितु शब्दकी लक्षणा शक्तिका आश्रय ग्रहण करता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि मीमांसक-दृष्टिसे समस्त वेद क्रियापरक हैं[3] तथा यागादि क्रियाद्वारा ही अभीष्ट-प्राप्ति एवं अनिष्टका परिहार किया जा सकता है। यतः '**स्वाध्यायोऽध्येतव्यः**' इस विधानसे वेदके अन्तर्गत ही अर्थवाद भी है, अतः उनको भी क्रियापरक मानना उचित है। जैसा कि पहले कहा गया है कि अर्थवादका प्रयोजन विधेयकी प्रशंसा एवं निषिद्धकी निन्दामें प्रकट होता है। विधान एवं निषेध क्रियाका ही होता है, अतः परम्परया अर्थवाद-वाक्य क्रिया (याग या धर्म)-परक होते हैं, अतएव उनका प्रामाण्य एवं उपादेयता सर्वथा सिद्ध है। इसी बातको आचार्य जैमिनिने इन शब्दोंमें कहा है—'**विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः**।'[4] उन्नीसवीं शतीके पूर्वार्धके बादसे पाश्चात्त्य नव्य वेदार्थ-विचारकों—बर्गाइन आदिने भारतीय चिन्तनकी इस दृष्टिको समझा तथा उसके आलोकमें नये सिरेसे वेदार्थ-विचारमें दृष्टि डाली।

प्राशस्त्य और निन्दासे सम्बन्धित अर्थवाद-वाक्य क्रमशः विधिशेष एवं निषेधशेष-रूपसे अभिहित किये गये हैं।[5] विधि अर्थात् विधायक वाक्य, शेष—अर्थवाद-वाक्य दोनों मिलकर एक समग्र वाक्यकी रचना करते हैं, जो कि विशिष्ट प्रभावोत्पादक बनता है। उदाहरणार्थ—'**वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः**' यह विधि-वाक्य है। इसका शेष—अर्थवाद—वाक्य है—'**वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता**'। यहाँ वायुकी प्रशंसा विधिशेषात्मक अर्थवादसे की गयी है। उपर्युक्त दोनों वाक्योंकी एकवाक्यता करके लक्षणाद्वारा यह विदित होता है कि वायुदेवता शीघ्रगामी हैं, अतः वे ऐश्वर्य भी शीघ्र प्रदान करते हैं। अब इस विशिष्ट प्रभावोत्पादक अर्थको सुनकर अधिकारी व्यक्तिकी प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार निषेध-शेषात्मक अर्थवादका भी साफल्य जानना चाहिये।

अर्थवादद्वारा प्रतिपादित विषय-परीक्षणकी दृष्टिसे शास्त्रमें इसके तीन भेद माने गये हैं—(१) गुणवाद, (२) अनुवाद और (३) भूतार्थवाद।

गुणवाद नामक अर्थवादमें प्रतिपाद्य अर्थका प्रमाणान्तरसे विरोध होता है। यथा—'**आदित्यो यूपः**'। यहाँ यूपका आदित्यके साथ अभेद प्रतिपादित है, जो कि प्रत्यक्षतया बाधित है। अतः अर्थसिद्धिके लिये ऐसे स्थलोंपर लक्षणाका आश्रय लेकर यूपका '**उज्ज्वलवादिगुणयोगेनादित्यात्मकत्वम्**' अर्थ किया जाता है।

अनुवाद-संज्ञक अर्थवादमें पूर्वपरिज्ञात या पूर्वानुभूत प्रमाणसे अर्थका बोध होता है, जबकि प्रतिपाद्य विषयमें केवल उसका 'अनुवाद' मात्र रहता है। उदाहरणार्थ—'**अग्निर्हिमस्य भेषजम्**' इस वाक्यमें प्रत्यक्षतया सिद्ध है कि अग्नि शैत्यका औषध है। इस पूर्वपरिज्ञात या पूर्वानुभूत विषय ('**यत्र यत्राग्निस्तत्र तत्र हिमनिरोधः**')-का प्रकाशन इस दृष्टान्तमें है, अतः यह अनुवाद है।

---

१-ब्राह्मणशेषोऽर्थवादः।

२-प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवादः (अ० सं०)।

३-आम्नायस्य क्रियार्थत्वात्० (जै० सू०)।

४-जै० सू० (१।२।७)।

५-स द्विविधः—विधिशेषो निषेधशेषश्चेति।

तृतीय भूतार्थवादमें भूतार्थका अर्थ पूर्वघटित किसी यथार्थ वस्तुके ज्ञापनसे है। यहाँ गुणवाद अर्थवादकी भाँति न तो किसी प्रमाणान्तरसे विरोध होता है और न ही अनुवाद अर्थवादकी भाँति प्रमाणान्तरावधारण होता है। अतएव शास्त्रमें इसका लक्षण किया गया है—'**प्रमाणान्तर-विरोधतत्प्राप्तिरहितार्थबोधकोऽर्थवादो भूतार्थवादः।**' इसका दृष्टान्त है—'**इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्।**' कहीं भी ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं होता जिससे इस कथनका विरोध हो, अतः प्रमाणान्तर-अविरोध है, साथ ही ऐसा भी प्रमाण नहीं है जिससे इसका समर्थन हो, अतः प्रमाणान्तरावधारण भी नहीं है। इस प्रकार उभय पक्षके अभावमें यह वाक्य भूतार्थवादका उदाहरण है।

अर्थवाद-भागको आचार्य पारस्करने 'तर्क' शब्दसे अभिहित किया है।[1] आचार्य कर्कने 'तर्क' पदकी व्याख्या करते हुए कहा कि जिसके द्वारा संदिग्ध अर्थका निश्चय किया जा सके, वह तर्क अर्थात् अर्थवाद है।[2] इसका उदाहरण देते हुए कहा कि—'**अक्ता शर्करा उपदधाति तेजो वै घृतम्**' इस वाक्यमें प्राप्त अञ्जन, तैल तथा वसा आदि द्रव्योंसे भी सम्भव है, किंतु '**तेजो वै घृतम्**' इस घृतसंस्तावक अर्थवाद-वाक्यसे संदेह निराकृत होकर घृतसे अञ्जन करना यह स्थिर होता है। इस प्रकार अर्थवाद-भाग महदुपकारक है।

आपस्तम्ब, पारस्कर आदि आचार्योंने वेदके तीन ही भाग माने हैं—विधि, मन्त्र और अर्थवाद। अर्थ-संग्रहकारने वेदके पाँच भाग माने हैं—विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद।[3]

**नामधेय**—जैसा कि संज्ञासे स्पष्ट है, नामधेय-प्रकरणमें कतिपय नामोंसे जुड़े हुए विशेष भागोंकी आलोचना होती है। इनमें '**उद्भिदा यजेत पशुकामः**', '**चित्रया यजेत पशुकामः**', '**अग्निहोत्रं जुहोति**', '**श्येनेनाभिचरन् यजेत**'—ये चार वाक्य ही प्रमुख हैं। नामधेय विजातीयकी निवृत्तिपूर्वक विधेयार्थका निश्चय कराता है।[4] यथा—'**उद्भिदा यजेत पशुकामः**' इस वाक्यमें पशु-रूप फलके लिये यागका विधान किया गया है। यह याग वाक्यान्तरसे अप्राप्त है और इस वाक्यद्वारा विहित किया जा रहा है। यदि इस वाक्यसे '**उद्भिद्**' शब्द हटा दिया जाय तो '**यजेत पशुकामः**' यह वाक्य होगा, जिसका अर्थ है—'**यागेन पशुं भावयेत्**', किंतु इससे याग-सामान्यका विधान होगा जो कि अविधेय है, क्योंकि याग-विशेषका नाम अभिहित किये बिना अनुष्ठान सम्भव नहीं है। '**उद्भिदा**' पदद्वारा इस प्रयोजनकी पूर्ति होती है, अतः 'उद्भिद्' यागका नाम हुआ तथा याग-विशेषका निर्देशक होनेसे विधेयार्थ-परिच्छेद भी हुआ। नामधेयत्व चार कारणोंसे होता है—(१) मत्वर्थ-लक्षणाके भयसे, (२) वाक्य-भेदके भयसे, (३) तत्प्रख्यशास्त्रसे और (४) तद्व्यपदेशसे।

**निषेध**—जो वाक्य पुरुषको किसी क्रियाको करनेसे निवृत्त कराता है, उसे 'निषेध' कहते हैं।[5] शास्त्रोंने नरकादिको अनर्थ माना है। इस नरक-प्राप्तिका हेतु कलञ्जभक्षणादि है, अतः पुरुषको ऐसे कार्योंसे 'निषेध-वाक्य' निवर्तित करते हैं। इस प्रकार अनर्थ उत्पन्न करनेवाली क्रियाओंसे पुरुषका निवर्तन कराना ही निषेध-वाक्योंका प्रयोजन है। मन्त्र-ब्राह्मणात्मक (विधिमन्त्र-नामधेय-निषेधार्थवाद-रूप) वेदमें कतिपय विचारकोंने ब्राह्मण-भागको वेद नहीं माना है। उनके प्रधान तर्क ये हैं—

(१) ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हींका नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी है।

(२) एक कात्यायनको छोड़कर किसी अन्य ऋषिने उनके वेद होनेमें साक्षी नहीं दी है।

(३) ब्राह्मण-भागको भी यदि वेद माना जाय तो '**छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि**'[6] इत्यादि पाणिनि-सूत्रमें

---

१-विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः (पा० गृ० सू० २। ६। ६)।

२-तर्कशब्देनार्थवादोऽभिधीयते। तर्क्यते ह्यनेन संदिग्धोऽर्थः (पा० गृ० सू० २। ६। ५ पर कर्क)।

३-स च विधिमन्त्रनामधेयनिषेधार्थवादभेदात् पञ्चविधः।

४-नामधेयानां च विधेयार्थपरिच्छेदकतयार्थवत्त्वम् (अ० स०)।

५-पुरुषस्य निवर्तकं वाक्यं निषेधः (अ० स०)।

६-पा० सू० (४। २। ६६)।

'**छन्दः**' शब्दके ग्रहणसे ही ब्राह्मणोंका भी ग्रहण हो जानेसे अलगसे 'ब्राह्मण' शब्दका उल्लेख करना व्यर्थ होगा।

(४) ब्राह्मण-ग्रन्थ चूँकि मन्त्रोंके व्याख्यान हैं, अतः ईश्वरोक्त नहीं हैं, अपितु महर्षि लोगोंद्वारा प्रोक्त हैं।

इसके समाधानमें यह कहना अत्यन्त संगत है कि ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मणोंको पुराण अथवा इतिहास नहीं कहा जाता; रामायण, महाभारत, विष्णुपुराण आदिको ही इतिहास, पुराण कहा जाता है। यदि पुरातन अर्थके प्रतिपादक होनेसे तथा ऐतिहासिक अर्थके प्रतिपादक होनेसे इनको पुराण-इतिहास कहा जायगा तो इस तरहकी संज्ञासे 'वेद' संज्ञाका कोई विरोध नहीं है, 'वेद' संज्ञाके रहते हुए भी ब्राह्मण-भागकी पुराण-इतिहास संज्ञा भी हो सकती है। भारतीय दृष्टिसे—भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ वेदसे ज्ञात होता है।[1] अतः जिस प्रकार कम्बु-ग्रीवादिसे युक्त एक ही पदार्थके घट, कलश आदि अनेक नामधेय होनेसे कोई विरोध उपस्थित नहीं होता, उसी तरह एक ही ब्राह्मण-ग्रन्थके वेद होनेमें और पुराण-इतिहास होनेमें कोई विरोध नहीं है।[2]

कात्यायनको छोड़कर किसी अन्य ऋषिने ब्राह्मण-भागके वेद होनेमें प्रमाण नहीं दिया है—यह कथन भी आधाररहित है, क्योंकि भारतीय दृष्टिसे किसी भी आप्त ऋषिका प्रामाण्य अव्याहत है। फिर ऐसी बात भी नहीं है कि अन्य ऋषियोंने ब्राह्मण-भागके वेदत्वको नहीं स्वीकारा है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, सत्याषाढ श्रौतसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र आदि ग्रन्थोंमें तत्तत् आचार्योंने मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंको वेद माना है। अतः यह शंका निर्मूल सिद्ध होती है।

पाणिनिके '**छन्दोब्राह्मणानि०**' इत्यादि सूत्रोंमें '**छन्दः**' शब्दसे ही ब्राह्मणका ग्रहण माननेपर '**ब्राह्मणानि**' यह पद व्यर्थ होगा, अतः यह कथन भी तर्क-संगत नहीं है। आचार्य पाणिनिने '**छन्दस्**' पदसे मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंका ग्रहण किया है, क्योंकि '**छन्दस्**' इस अधिकारमें जो-जो आदेश, प्रत्यय, स्वर आदिका विधान किया गया है, वे दोनोंमें पाये जाते हैं। जो कार्य केवल मन्त्र-भागमें इष्ट था, उसके लिये सूत्रोंमें '**मन्त्रे**' पद तथा जो ब्राह्मणमें इष्ट था उसके लिये 'ब्राह्मण' पद दिया है। यह भी ध्यातव्य है कि '**छन्दः**' पद यद्यपि मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदका बोधक है, किंतु कभी-कभी वे इनमेंसे किसी एक अवयवके भी बोधक होते हैं। महाभाष्य पस्पशाह्निक एवं ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्यमें यह स्पष्ट किया गया है कि समुदायार्थक शब्दोंकी कभी-कभी उनके अवयवोंके लिये भी प्रवृत्ति देखी जाती है। यथा—'पूर्वपाञ्चाल, उत्तरपाञ्चाल आदिका प्रयोग।' अतः शास्त्रमें छन्द अथवा वेद शब्द केवल मन्त्र-भाग, केवल ब्राह्मण-भाग अथवा दोनों भागोंके लिये प्रसंगानुसार प्रयुक्त होते हैं।

ब्राह्मण-भाग मन्त्रोंके व्याख्यान हैं, अतः वे वेदान्तर्गत नहीं हो सकते—यह कथन भी सर्वथा असंगत है। मीमांसा एवं न्यायशास्त्रमें वेदके जो विषय-विभाग किये गये हैं—विधि, अर्थवाद, नामधेय और निषेध, वे सभी मुख्यतया ब्राह्मणमें ही घटित होते हैं। कृष्णयजुर्वेदकी तैत्तिरीय-संहिता आदिमें तो मन्त्र और ब्राह्मण सम्मिलित-रूपमें ही हैं। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि महाभाष्यकार पतञ्जलिने यह विचार उठाया है कि व्याकरण केवल सूत्रोंको कहना चाहिये या व्याख्यासहित सूत्रोंको? इसका सिद्धान्त यही दिया गया है कि व्याख्यासहित सूत्र ही व्याकरण है। इसी प्रकार व्याख्या (ब्राह्मण)-सहित मन्त्र वेद है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण-भाग मात्र मन्त्रोंका व्याख्यान नहीं करता; अपितु यज्ञादि कर्मोंकी विधि, इतिकर्तव्यता, स्तुति तथा ब्रह्मविद्या आदिका स्वतन्त्रतया विधान करता है। अतः ब्राह्मण-भागका वेदत्व सर्वथा अव्याहत है।

मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदके विषय-सम्बन्धी तीन भेद परम्परासे चले आ रहे हैं। इनमें कर्मकाण्डके प्रतिपादक भागका नाम 'ब्राह्मण', उपासनाकाण्डके प्रतिपादक भागका नाम 'आरण्यक' तथा ज्ञानकाण्डके प्रतिपादक भागका नाम 'उपनिषद्' है।

**वेदका विभाजन**—भारतीय वाङ्मयमें बतलाया गया है कि सृष्टिके प्रारम्भमें ऋग्यजुःसाम-अथर्वात्मक वेद एकत्र संकलित था। सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुगकी लगभग समाप्तितक एकरूप वेदका ही अध्ययन-अध्यापन

१-भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥ (मनु० १२। ९७)

२-वेदार्थपारिजात।

यथाक्रम चलता रहा। द्वापरयुगकी समाप्तिके कुछ वर्षों-पूर्व महर्षि व्यासने भावी कलियुगके व्यक्तियोंकी बुद्धि, शक्ति और आयुष्यके ह्रासकी स्थितिको दिव्य दृष्टिसे जानकर ब्रह्मपरम्परासे प्राप्त एकात्मक वेदका यज्ञ-क्रियानुरूप चार विभाजन किया। इन चार विभाजनोंमें उन्होंने होत्रकर्मके उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओंका संकलन ऋग्वेदके नामसे, यज्ञके आध्वर्यव कर्म (आन्तरिक मूलस्वरूप-निर्माण)-के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओंका संकलन यजुर्वेदके नामसे, औद्गात्र कर्मके उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओंका संकलन सामवेदके नामसे और शान्तिक-पौष्टिक अभिलाषाओं (जातविद्या)-के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओंका संकलन अथर्ववेदके नामसे किया। इस विभाजनमें भगवती श्रुतिके वचनको ही आधार रखा गया। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि सम्प्रति प्रवर्तमान वेद-शब्दराशिका वैवस्वत मन्वन्तरमें कृष्णद्वैपायन महर्षि व्यासद्वारा यह २८वाँ विभाजन है अर्थात् पौराणिक मान्यताके अनुसार इकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक चतुर्युगीके अन्तर्गत द्वापरयुगकी समाप्तिमें विशिष्ट तपःसम्पन्न महर्षिके द्वारा एकात्मक वेदका चार विभाजन अनवरत होता रहता है। यह विभाजन कलियुगके लिये होता है और कलियुगके अन्ततक ही रहता है। सम्प्रति मन्वन्तरोंमें सप्तम वैवस्वत नामक मन्वन्तरका यह २८ वाँ कलियुग है। इसके पूर्व २७ कलियुग एवं २७ ही वेदविभागकर्ता वेदव्यास (विभिन्न नामोंके) हो चुके हैं। वेदोंका यह २८वाँ उपलब्ध विभाजन महर्षि पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायनके द्वारा किया गया है। वेदोंका विभाजन करनेके कारण ही उन महर्षिको 'वेदव्यास' शब्दसे जाना जाता है।

**चार वेद और उनकी यज्ञपरकता**—जैसा कि ऊपर कहा गया है वेदविभागकर्ता व्यासोपाधिविभूषित महर्षि कृष्णद्वैपायनने यज्ञ-प्रयोजनकी दृष्टिसे वेदका ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—यह विभाजन प्रसारित किया; क्योंकि भारतीय चिन्तनमें वेदोंका अभिप्रवर्तन ही यज्ञ एवं उसके माध्यमसे समस्त ऐहिकामुष्मिक फलसिद्धिके लिये हुआ है। वैदिक यज्ञोंका रहस्यात्मक स्वरूप क्या है एवं साक्षात्कृतधर्मा ऋषियोंने किन बीजोंद्वारा प्रकृतिसे अभिलषित पदार्थोंका दोहन इस भौतिक यज्ञके माध्यमसे आविष्कृत किया, यह पृथक् विवेचनीय विषय है। यहाँ स्थूलदृष्ट्या यह जानना है कि प्रत्येक छोटे (इष्टि) और बड़े (सोम, अग्निचयन) यज्ञोंमें मुख्य चार ऋत्विक्—होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा होते हैं। बड़े यज्ञोंमें एक-एकके तीन सहायक और होकर सोलह ऋत्विक् हो जाते हैं, किंतु वे तीन सहायक उसी मुख्यके अन्तर्गत मान लिये जाते हैं। इनमें 'अध्वर्यु' नामक ऋत्विक् द्रव्य-देवतात्यागात्मक यज्ञस्वरूपका निर्माण यजुर्वेदसे करता है। 'होता' नामक ऋत्विक् यज्ञके अपेक्षित शस्त्र (अप्रगीत मन्त्रसाध्य स्तुति) एवं अन्य अङ्गकलापोंका अनुष्ठान ऋग्वेदद्वारा तथा 'उद्गाता' नामक ऋत्विक् स्तोत्र (गेय मन्त्रसाध्य स्तुति) और उसके अङ्गकलापोंका अनुष्ठान सामवेदद्वारा करता है। 'ब्रह्मा' नामक चतुर्थ ऋत्विक् यज्ञिय कर्मोंके न्यूनादि दोषोंका परिहार एवं शान्तिक-पौष्टिक-आभिचारिकादि सर्वविध अभिलाष-सम्पूरक कर्म अथर्ववेदद्वारा सम्पादित करता है।

**वेदत्रयी**—कतिपय अर्वाचीन वेदार्थ-विचारक **'सैषा त्रय्येव विद्या तपति'** (श० ब्रा० १०।३।६।२), **'त्रयी वै विद्या'** (श० ब्रा० ४।६।७।१), **'इति वेदास्त्रयस्त्रयी'** इत्यादि वचनोंके द्वारा वेद वस्तुतः तीन हैं तथा कालान्तरमें अथर्ववेदको चतुर्थ वेदके रूपमें मान्यता दी गयी—ऐसी कल्पना करते हैं, किंतु यह कल्पना भारतीय परम्परासे सर्वथा विपरीत है। भारतीय आचार्योंने रचना-भेदकी दृष्टिसे वेदचतुष्टयीका त्रित्वमें अन्तर्भाव कर उसे लक्षित किया है। रचना-शैली तीन ही प्रकारकी होती है—(१) गद्य, (२) पद्य और (३) गान। इस दृष्टिसे—छन्दमें आबद्ध, पादव्यवस्थासे युक्त मन्त्र 'ऋक्' कहलाते हैं; वे ही गीति-रूप होकर 'साम' कहलाते हैं तथा वृत्त एवं गीतिसे रहित प्रश्लिष्टपठित (-गद्यात्मक) मन्त्र 'यजुष्' कहलाते हैं।* यहाँ यह ध्यातव्य है कि छन्दोबद्ध ऋग्विशेष मन्त्र ही अथर्वाङ्गिरस हैं, अतः उनका ऋग्रूपा (पद्यात्मिका) रचना-शैलीमें ही अन्तर्भाव हो जाता है और इस प्रकार वेदत्रयीकी अन्वर्थता होती है।

* पादेनार्थेन चोपेता वृत्तबद्धा मन्त्रा ऋचः। गीतिरूपा मन्त्राः सामानि। वृत्तगीतिवर्जितत्वेन प्रश्लिष्टपठिता मन्त्रा यजूंषि।